International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor- 5.414, Volume 5, Issue 2, February 2018
Website- www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

तुलसी–साहित्य में सामाजिक–सांस्कृतिक जागरण

डा. राजेश कुमार

सहायक प्राध्यापक

रामलाल आनंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय साहित्य परम्परा में भक्ति को लोक जीवन में उतारने का साहसिक प्रयास गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में किया। वैदिक काल से ही भारतीय समाज में अमूल्य सास्कृतिक कारकों को देखा जा सकता है, और भक्ति काल के सभी कवियों ने इन कारकों का संरक्षण किया। सामाजिक समरसता, सहिष्णुता, सौहार्द, सत्य, अहिंसा, प्रेम, आदर्शवाद, और वसुधैव कुटुम्बकम भारतीय संस्कृति के मुख्य स्तम्भ रहे हैं। परिवार व समाज का संगठित रूप, लोक जीवन की गतिशीलता, लोक मर्यादा का निर्वाह, मानव जीवन की विशुद्धता आदि सभी भारतीय संस्कृति के रूप चाहे वो कितने ही सूक्ष्म हों या स्थूल हों, ये सब तुलसी के काव्य का हिस्सा बने हैं। तुलसीदास का मानना है कि व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है इसलिए तुलसीदास के लिए सबसे जरूरी राष्ट्र का निर्माण है और इसके लिए पहली शर्त है– चरित्र का निर्माण। यदि तुलसीदास के भक्ति के स्वरूप को देखा जाये तो कहा जा सकता है कि वो राष्ट्र निर्माण की अखण्डता को बनाये रखने के लिए भक्ति के दोनों रूपों यानि अगुन और सगुन में समन्वय साधते हैं–

सगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।

मोरे मत बड़ नामु दुहु तें। फिर जेंहि जुग निज बस निज बूतें।।[प]

गोस्वामी तुलसीदास परम्पराओं का निर्वाह मर्यादाओं के समर्थन और उनके पोषण के बल पर करते हैं और इनकी तलाश वे सामाजिक सम्बन्धों में करते हैं। राम का चरित्र लोक मर्यादा का प्रतिरूप है और उनकी प्रकार्यात्मकता मर्यादा के संरक्षण की परिधि का फैलाव करती है। शील, शक्ति और सौन्दर्य के प्रतीक श्रीराम तुलसीदास के हर उद्देश्य के पूरक बनकर उभरे हैं जो किसी

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

राष्ट्र के सांस्कृतिक जागरण के लिए आवश्यक है। राम का चरित्र भारत जन के लिए सैदव आस्था का विषय रहा है क्योंकि वो अवतारी पुरूष होते

हुए भी मानव मन की तमाम वृतियों के द्योतक रहे हैं। यहीं मनुष्य के अन्तर्मन के जागरण की शुरूआत मानी जाती है। जगत में व्याप्त विषमताओं का निराकरण राम भक्ति से ही संभव है।

समाज की पूर्ण अभिव्यक्ति का रूप तुलसी कृत रामचरितमानस में देखने को मिलता है जहाँ मानव संस्कृति का जागरण अपने आदर्श रूप में दिखाई देता है। मात्रात्मक रूप में 'रामचरितमानस' ही समाज का जागरण एवं संरक्षण है, जहाँ एक ओर आदर्शो के पालन का संदेश है वहीं दूसरी ओर कलिककाल के प्रभाव से दुखी जन का कठोर यथार्थ रूप है। यह ग्रंथ भारतीय मानस से लोक व्यवहार की अपेक्षा करता है और यह तभी संभव है जब मनुष्य विवेकसम्मत होगा। विवेकशील बनकर ही आदमी सामाजिक प्राणी बन सकता है तभी वह परदुखकातरता का निराकरण करेगा और आदर्श मूल्यों की पुनर्स्थापना करेगा। धैर्य, संयम, सहिष्णुता आदि भारतीय मेधा के परिचायक हैं, तुलसीदास रामचरिमानस में सांस्कृतिक मूल्यों का अनुप्रयोग इन्हीं के साथ करते हुए दिखाई देते हैं। तुलसीदास का मानना है कि इनके अभाव में जग में मनुष्य ही नहीं प्राकृतिक सम्पदाओं की भी कमी होती है और संसार से विवेक लुप्त हो जाता है, जिसके कारण हमें कटु यथार्थ का अहसास होता है। बेगारी से समाज अभावग्रस्त होता है और जीवन की कठिनाइयाँ लगातार बढ़ती जाती हैं। इस कटु यथार्थ का उल्लेख तुलसीदास ने 'कवितावली' में किया है–

खेती न किसान को भिखारी को न भीख

बलि बनिज को बनिज न चाकर को चाकरी

जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोचबस

कहैं एक–एकन सों कहाँ जाई का करी।।[पप]

विश्वकल्याण की कामना भारतीय मनीषियों की पुरातन संस्कृति का अभिन्न हिस्सा रही है जो कि आज भी निरन्तर भारतीय संस्कृति में गतिशील है। किसी समाज की स्थापना, उसकी दृढ़ता और उसका पोषण तभी सम्भव है जब सहयोगी समाज के कल्याण की कामना करेंगे। यह सकारात्मक चिन्तन भारतीय दर्शन का प्रतिरूप है। डॉ. कृष्णचंद्र गोस्वामी ने लिखा है कि 'साहित्य की भारतीय परम्परा में यथार्थ को विकृति बनने देने के स्थान पर उसे संस्कृति में रूपान्तरित करने की साधना का प्रवाह अपराजित भाव से सतत प्रवहमान रहा है।' तुलसीदास समाज का कल्याण राम की भक्ति को मानते हैं। यह उनका

दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य को दैहिक, दैविक और भौतिक–इन तीनों तरह के ताप से मुक्ति राम का स्मरण करने से ही हो सकती है, क्योंकि वही समाज के संरक्षक हैं। सेवक के स्मरण करने मात्र से ही कल्याण का मार्ग खुलने लगता है–

राम नाम को कल्पतरू कलि कल्यान निवासु।

जो सुमिरत भयौ माँग ते, तुलसी तुलसीदासु।।[पपप]

जनमानस के अन्तद्वन्द्वों का उदघाटन समाज के जागरण का प्रस्थान बिन्दु है। तुलसी अपने जीवन में यथार्थ के भोक्ता रहे हैं। इस कारण से इनके काव्य में समाज की प्रस्तुति का रूप विशुद्ध दिखाई देता है। जनमानस में गहराई तक पैठ जमाये हुए समाज की विसंगतियाँ और बिखराव उनकी कथाओं का हिस्सा रहा है इसके माध्यम से तुलसी यथार्थ को भारतीय संस्कृति के मूल्यों में रूपान्तरित करने का सफल प्रयास करते हैं। दरअसल यह प्रयास तुलसी के अलावा जनमानस का भी था, परन्तु कलि के प्रभाव के डर से वह दबा ही रहा, किन्तु गोस्वामी ने जग के आन्तरिक और बाह्य संघर्षों को साधते हुए आम जन के संकल्पों और आकांक्षाओं का नेतृत्व किया। भारतीय दर्शन और संस्कृति का यह विशिष्ट पहलू है कि जहाँ सत्य एवं उसके रूपों का उदघाटन होता है वहीं शिव का वास होता है। अतः समाज का सौन्दर्य संस्कृति के पोषण में हैं। तुलसी के काव्य में यही चरित्रार्थ हुआ है।

धर्म की स्थापना सामाजिक संस्कृति का मूल स्वर है। धर्म मानवीय कर्तव्यों का निर्वाह है, यह सत्य का पक्षधर है। तुलसीदास का मानना है कि धर्म के बल पर ही अच्छे समाज की संरचना की जा सकती है। धर्म ही मनुष्य के अन्तर्मन को जागृत करता है तभी उसके मन में परोपकार की भावना पैदा होती है। जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एवं तीनों लोकों में समृद्धि के लिए धर्म को साधना अति आवश्यक है। धर्म की प्रयोजनमूलकता पर महामुनि कणाद ने लिखा है कि–'जिससे अभ्युदय और निश्रेयस की सिद्धि होती है, वही धर्म है।'[पअ]समाज की विषमता और जीवन की अनिश्चितता तुलसीदास के युगीन परिवेश की पहचान थी जिससे समाज में अमंगल ही व्याप्त था। तुलसीदास जैसे सुधीजन इस बात को भली–भांति जानते थे कि आदर्श राज्य की परिकल्पना तभी संभव है जब लोक में मंगल का प्रचार व फैलाव होगा। लोकमंगल को तुलसीदास आध्यात्मिक ही नहीं उसे सामाजिक और सांस्कृतिक रूप भी देना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि लोकमंगल की भावना

आदमी के व्यवहार का हिस्सा बननी चाहिए। गोस्वामी का समस्त काव्य लोकमंगल की भावना से परिपूर्ण होकर ही सत्य, शिवं, सुन्दरं की व्यापक परिधि तक दिखाई देता है। यदि तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य देखा जाये तो एक ऐसा कटु यथार्थ सामने दिखाई देता है जहाँ नैतिकता का ह्रास है, परिवार व सामाजिक संस्कारों का विघटन है और सत्ता पक्ष अमर्यादित नीतियाँ समाज के ऊपर थोप रहा है। हर तरफ सांस्कृतिक मूल्यों का अवमूल्यन दिखाई देता है। सामाजिक हित ही केवन इन मूल्यों का पत्तन होने से बचा सकता था। यही कारण था कि तुलसीदास ने अपने काव्य

में लोकमंगल की भावना को सर्वोच्च महत्व दिया। लोकमंगल के परिप्रेक्ष्य में ही जनमानस के आचरण को सुधारा जा सकता है। अराजकता, मिथ्या, स्वार्थ जैसे अनैतिक कारकों को मंगल की स्थापना से खत्म किया जा सकता है और तभी समाज की संस्कृति को बचाया जा सकता है। तुलसीदास की लोकमंगल की भावना का रूप इतना प्रौढ़ है कि मनुष्य के मन से काम, क्रोध और मोह जैसे विकारों का शमन आवश्यक है–

तात तीनी अति प्रबल खल, काम, क्रोध अरू लोभ

मुनि विग्यान धाम मन करहिं निमिष महं छोभ।।[अ]

गोस्वामी का लोकमंगल दयाभाव व परोपकार की जमीन पर स्थित है। ये मानवीय संस्कृति के अपेक्षित गुण हैं। मनुष्य में दयाभावना उसके संकीर्ण स्वभाव और अहं को नष्ट करती है, इसी से वह परहित के लिए अपने आप को प्रेरित करता है। तुलसीदास दयाभाव पर जोर देते हुए कहते हैं–

दया धरम को मूल है पाप मूल अभिमान

तुलसी दया न छाँड़िये जब लागे घट में प्राण।।[अप]

तुलसी के काव्य में सदभाव का विशेष महत्व है। सामाजिक सौहार्द किसी भी समाज के विकास और गतिशीलता के लिए जरूरी है। राजा और प्रजा के बीच सदभाव की भावना किसी भी राष्ट्र में राजनैतिक संकट पैदा नहीं होने देती। सामाजिक वैमनस्य को सदभाव व प्रेम के बल पर दूर किया जा सकता है। लोगों में यदि अपने राजा के प्रति प्रेम है और राजा के मन में प्रजा की भलाई व रक्षा सर्वोच्च है तो दोनों पक्षों में सौहार्द स्थायी भाव में रहता है। तुलसीदास ने यही प्रेम व सौहार्द श्रीराम के परिवार में दिखाया है। श्रीराम

के वनगमन के समाचार को सुनकर समस्त अयोध्यावासी विषादग्रस्त हो जाते हैं और अपने होने वाले राजा श्रीराम के साथ वन में जाने को तैयार हो जाते हैं–

अवध सोक संताप बस विकल सकल नर नारि।

बाम विधाता राम बिनु, मांगत मीचु पुकारी।।[अपप]

लोक मर्यादा के रूप गोस्वामी के यहाँ कई जगह दिखाई देते हैं और ये सब अलग–अलग सामाजिक मर्यादाओं को बनाकर रखते हैं। लोकलाज की प्राथमिकता श्रीराम और तुलसीदास–दोनों के लिए महत्वपूर्ण रही है। श्रीराम के संदर्भ में तुलसी की मर्यादा समाज को खण्डित होने से बचाती है। मर्यादा की व्यापकता का यह भाव सीता की अग्निपरीक्षा में देखा जा सकता है। समाज में सहिष्णुता बनी रहे, प्रजा का कोई आदमी सदचरित को संदेह से न स्वीकार करे, इस परिस्थिति को राम जैसे मर्यादा पुरूषोत्तम ही सम्भाल सकते हैं और सीता जैसी श्रेष्ठ नारी ही सामाजिक मर्यादा को बनाये रखने के लिए राम की आज्ञा का पालन कर सकती है–

चरचा चरनी सों चरची जानमनि रघुराई।

दूत–मुख सुनि लोक–धुनि घर घरनि बूझी आइ।।

प्रिया निज अभिलाष रूचिकहि कहति सिय सकुचाइ।

तीय–तनयसमेत तापस पूजिहौं बन जाइ।।[अपपप]

गोस्वामी तुलसीदास भारतवर्ष के रीति–रिवाजों को सांस्कृतिक उत्थान के लिए अति आवश्यक मानतें हैं। रीतियों का निर्वाह राजा और प्रजा दोनों के लिए है। पुरातन समाज से ही अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों का पालन रीति– रिवाजों के संदर्भ में किया जाता है, इससे मनुष्य संस्कृति का संरक्षण ही नहीं करता अपितु उनमें अपनी आस्था और विश्वास को प्रगाढ़ बनाता है। तुलसी के काव्य में यह विविध रूप में दिखाई देता है। राजा अपनी प्रजा के प्रति उचित रीतियों का पालन अनेक स्रोतों से करता है, अधिकतर ये स्रोत मन्त्रीगण और परिषद के सदस्य होते हैं। लोक हित का निर्णय श्रीराम अपने सभासदों से उचित परामर्श के बाद ही लेते हैं ताकि उनसे सामाजिक रीतियों का अतिक्रमण न हो। श्रीराम अपनी प्रजा का पालन पोषण संतान की भांति करते हैं। कहने का तात्पर्य है कि प्रजा का विश्वास अपने राजा में तभी पैदा होता है जब वह संस्कृति के उपकरणों का उचित प्रयोग करता है–

रसना मंत्री दसन जन तोष पोष निज काज

प्रभु कर सेन पदादि का बालक राज समाज।।[पग]

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि तुलसी के युग में जनता राजनैतिक और सामाजिक स्तर पर त्रस्त थी और भारतीय संस्कृति पर निर्मम प्रहार हो रहा था। ऐसे में जनता को तत्कालीन चुनौतियों के सामने खड़ा होकर मुकाबला करना बड़ा मुश्किल काम था। इतनी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद तुलसीदास ने भारतीय जन को 'पराधीन सपनेहु सुखु नाहीं' जागरण गीत का उदघोष सुनाया। तुलसीदास की यह गीत पंक्ति हिन्दी साहित्य की अनमोल निधि है जिसकी गूंज हमें स्वाधीनता आन्दोलन तक दिखाई देती है। तात्पर्य यह है कि तुलसी का सांस्कृतिक जागरण हमें अनेक रूपों में बल देता है। गोस्वामी के सांस्कृतिक संदर्भ भारतीय अस्मिता को हर युग में नया जीवन देते हैं, ये न्याय–अन्याय, धर्म–अधर्म और पाप–पुण्य को पहचानने का विवेक पैदा करते हैं। उन्नत समाज की संकल्पना सत्य, निष्ठा, आचरण और सदगुणों के समन्वय से ही पूर्ण हो सकती है।

————————————————————

संदर्भ–सूचीः

[प]रामचरितमानस, अयोध्याकाड–152–2
[पप]कवितावली–18,
[पपप]राामचतिमानस, बालकाण्ड–26
[पअ]'यतोभ्युदय निश्रेयससिद्धिः सः धर्मः'– धर्म और उसकी आवश्यकता, ज्ञानचन्द आर्य, पृष्ठ–8
[अ]रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड–38 (क)
[अप]दोहावली–37
[अपप]रामाज्ञा प्रश्न–4
[अपपप]गीतावली, उतरकाण्ड–27,1–2
[पग]दोहावली– 525